संपादकीय

वातानुकूलित वस्त्र विचार है खादी

पंडित जवाहरलाल नेहरू की काव्यमय शब्दावली में, 'यह भारत की स्वतंत्रता का बाना है।' स्वतंत्रता संग्राम व स्वदेशी आंदोलन की सहचारिणी होने की वजह से इसमें परंपरा व विरासत की थाती सिमटी हुई है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इसे राष्ट्रीय प्रतीक बताया है। लेकिन इस खादी के वस्त्र को जब बड़े लोग धारण करते हैं, तो वह सादगी का सूचक बनता है और जब साधारण लोग पहनते हैं, तो यह उनकी मजबूरी मानी जाती है और कई एक बार वास्तव में मजबूरी होती भी है। यह सामूहिक अंतर्मानस का कटु सच है। किसी साधारण आदमी की गँवई भोज में यदि गेहूँ के आटे का फुल्का, मक्के की रोटी, बथुए का साग, प्याज का सलाद आदि चला दिया जाए, तो इससे उसका दकियानूसीपन जाहिर होगा। लोग सीधे कहेंगे कि जब सामर्थ्य ही नहीं था, तब भोज करने की क्या आवश्यकता थी? लेकिन जब शहरी रईस लोगों के यहाँ ये सब आइटम चलते हैं, तो इसे सादगी व बड़प्पन के साथ 'सादा जीवन उच्च विचार' कहकर विभूषित किया जाता है। गाँधी जी व रामदेव जी की दो-ढाई गज की धोती उनकी महानता को इंगित करती है, जबकि बृहद् मध्यम वर्गीय लोगों द्वारा ऐसा करना, गरीबी और कृपणता का लक्षण कहा जा सकता है। इस प्रकार की प्रचलित सामाजिक रूढ़ियों के कारण व्यक्ति सहज-सरल जीवन चाहकर भी, उससे कतराकर निकलने के लिए ही सोचने लगता है, लेकिन वहाँ भी परिवार, समाज उसे जीने नहीं देता।

देश के प्रधानमंत्री द्वारा झाड़ू चलाकर सफाई अभियान की शुरुआत करना, देशवासियों को झाड़ू उठाकर साफ-सफाई करने के लिए प्रेरित करता है। इससे पहले आम आदमी पार्टी ने सभा, प्रदर्शन व जुलूस से लेकर चुनाव-चिन्ह तक के रूप में झाड़ू को ब्रांड की तरह इस्तेमाल करके चुनाव में बंपर बहुमत से जीत हासिल कर ली। नामी-गिरामी लोगों के द्वारा किसी अभियान का प्रतीकात्मक रूप में आरंभ करने से बाकी लोगों को प्रेरणा व प्रोत्साहन मिलता है; लेकिन ऐसे अभियानों में जो सामान्यजन झाड़ू लेकर स्वच्छता मिशन पर निकलते हैं, वे भी अपने यहाँ सफाई करना अपनी तौहीन ही समझते हैं। मध्य वर्ग के कितने लोग सहर्ष घर-दरवाजे की सफाई अपने-आप करते हैं, जैसा कि गाँधी जी स्वयं करते थे, मजबूरी की बात अलग है। झाड़ू चलाने वाले पेशवरों को ही नहीं, बल्कि झाड़ू से अपने घर-आँगन को साफ-सुथरा बनाने वालों को सम्मान की नजर से नहीं, हिकारत की नजर देखा जाता है। यहाँ दिखावाप्रधान माहौल का दोहरापन झलकता है। इन सबके बावजूद, आजकल भी पुरानी चीजों या मूल्यों को जब किसी खास मकसद से व्यापक अभियान के तहत सम्मिलित कर अपना लिया जाता है, तो उसके प्रति ललक व ताजगी भर जाती है। कालांतर में किस्म-किस्म की स्टाइलिश टोपियों ने 'गाँधी टोपी' का स्थान ले लिया था, पर अन्ना आंदोलन और उससे उपजे आम आदमी पार्टी ने अपने कार्यक्रमों में व्यवहृत कर-कराके आज के फैशनपरस्त समाज में भी 'गाँधी टोपी' को सामूहिक रुचि व अभिव्यक्ति के माध्यम के तौर पर पुनः थोड़ी लोकप्रियता दिला दी है।

किसी-न-किसी रूप में खादी, हस्तकरघा व हस्तकला के उत्पादों से मनुष्य की आवश्यकता-पूर्ति की परंपरा प्रागैतिहासिक काल से है, 'ऋग्वेद' से लेकर प्राचीन व मध्यकालीन इतिहास एवं साहित्य के ग्रंथों में भी इसका उल्लेख मिलता है। सच तो यह है कि इन्हीं के सहारे तब मनुष्य का जीवन सहज ढंग से चलता था। आधुनिक दौर के नवजागरण के अंतर्गत १९१५ ई. में दक्षिण अफ्रीका से वापस आने के बाद गाँधी जी ने आर्थिक स्वतंत्रता, समानता व एकता स्थापित करने के निमित्त खादी को अपनाने पर जोर दिया। स्वदेशी मनोकामना के अंतर्गत अपने बुद्धि-विवेक व परिश्रम के द्वारा जीवन की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में इसे परिकल्पित किया -'खादी की मनोवृत्ति का मतलब है जीवन की सभी आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन व वितरण का विकेन्द्रीकरण। इसका अर्थ है कि प्रत्येक गाँव अपनी समस्त आवश्यक चीजों को स्वयं पैदा करे तथा स्वयं ही उसकी खपत भी करे। कुछ अतिरिक्त उत्पादन-अंश वह शहरों में भी भेजे।' यह गाँवों की आत्मनिर्भरता के लिए जरूरी उपक्रम बना।

इस प्रकार खादी पहनावे का वस्त्र मात्र न रहकर ओढ़ना-बिछौना से लेकर तेल, साबुन, मेहँदी, शैंपू, मुरब्बा, अचार, शहद, जूता-चप्पल सहित बुनियादी

जरूरत वाले प्लास्टिक, कागजी, चर्म, खाद्य, औषधीय, जैव उत्पादों का समन्वित नाम है।

यह ठीक है कि अब खादी का अर्थ-संदर्भ वही नहीं हो सकता, जो सौ साल पहले था; किंतु आज भी इसके सादगी, सदाचार, संयम, अशोषण व अहिंसा के पर्याय होने में संदेह नहीं है। इससे भव्यता, शान-शौकत, बेशकीमती व आयातित के प्रति विरक्ति उत्पन्न होती है तथा शालीन, स्वदेशी, उपयोगी व आरामदायक के प्रति आकर्षण का भाव भरता है। यह वातानुकूलित लिबास प्रकृति के भी ज्यादा सन्निकट ठहरता है। अत्याधुनिक ए. सी. यानी एयर कंडीशंड कक्ष-गाड़ी या जगह के बंद होने पर ही कार्य करता है, जबकि खादी के कपड़े चलते, फिरते कहीं भी, खुले में भी आवश्यकतानुसार शीतलता, गरमाहट उत्पन्न करते हैं। निचले स्तर तक के लोगों को स्वरोजगार द्वारा बुनियादी जरूरत की चीजें मुहैया कराने की दृष्टि से भी खादी कारगर है। इस समय लगभग सत्रह सौ खादी की संस्थाएँ भिन्न-भिन्न रूपों में यह कार्य कर रही हैं, किंतु ज्यादातर संस्थाएँ व समूचा खादी ग्रामोद्योग अच्छी स्थिति में नहीं है। इस कृषि आधारित लघु, कुटीर व ग्रामीण उद्योग से मानवीय श्रम की महत्ता प्रतिपादित होती है, सर्वतोन्मुखी दक्षता-कुशलता सृजित होती है, जो दूसरी कलाओं के विकास में भी सहायक है। इसकी मनोमय स्थिति में शोषण, दमन व हिंसा से व्यक्ति विलग रहता है। आत्मिक फलक पर खादी बाजारूवृत्ति से विलग रहकर आवश्यकताओं को सीमित करके, संयत तरीके से अपनी जरूरत स्वयं पूरी करने का सूत्र है।

भोगवाद की चकाचौंध के कारण संयम वाले पदार्थों का भी आजकल भोग होने लगा है। और तो और, कई बार स्वयं योग का भी भोग दृष्टिगत होता है। बाजारवाद, उपभोक्तावाद तथा विज्ञापन अब समाज का मानस निर्मित करने वाले सबसे प्रभावी नियामक तत्व हैं। इसलिए मन-बुद्धि बाजारोन्मुख है, भोगोन्मुख है। ऐसे में बाकी चीजों की तरह खादी एक तरफ शान-शौकत की पहचान बनती जा रही है, तो दूसरी ओर सामान्य लोगों की पहुँच से बाहर हो रही है।

सभी तरह के कपड़े सस्ते व महँगे होते हैं और सबकी सिलाई का खर्च भी आजकल करीब-करीब बराबर ही आता है, फिर भी एक सामान्य धारणा बनती जा रही है कि खादी पहनना महँगा सौदा है। इसमें शक नहीं कि इसकी धुलाई व रखरखाव एक बार नए खरीदने से ज्यादा महँगा पड़ता है और खादी के वस्त्र अपेक्षाकृत कम समय चलते भी हैं, लेकिन सफाई के बाद अन्य वस्त्रों के ठीक उलट इसकी चमक अधिक निखरती जाती है। तड़क-भड़क, कामुक प्रवृत्ति के चलन तथा भागदौड़ की जिंदगी में अन्यान्य कार्यक्षेत्रों के अनुकूल कम बैठने के कारण खादी से लोग दूर होते गए हैं।

आजकल की राजनीति व नेतागिरी की वजह से इसे बदनामी भी मिली है, हालाँकि नेता लोगों ने ही खादी को सबसे अधिक अपनाकर जीवित भी रखा है। सभी क्षेत्रों में मूल्यों में गिरावट आई है, तथापि राजनीति में यह अधिक दृश्यमान है। एक लोकोक्ति है -

'तूँहूँ लूँटऽ हमहूँ लूँटीं, लूटे के आजादी बा,
सबसे जादा उहे लूटी, जेकरा देह पर खादी बा।'

अर्थात् सबको लूटने का अवसर मिलता है, लुटने की भी स्थिति कभी-कभार आ ही जाती है, लेकिन इसका सर्वाधिक फायदा खद्दरधारी लोग ही उठा पाते हैं। इसी प्रकार केदारनाथ अग्रवाल ने भी लिखा है -

'थान खद्दर के लपेटे स्वार्थियों को
पेट-पूजा की कमाई में जुटा मैं देखता हूँ।'

लेकिन यह याद रखना जरूरी है कि केवल खादी पहन लेने से कोई नेता नहीं हो जाता और नेता बनने के लिए खादी पहनने की कोई अनिवार्यता भी नहीं होती; न ही सारे नेता बेईमान होते हैं और न ही कथित या स्वयंभू सारे अराजनीतिक ईमानदार। इसलिए पूर्णतः नहीं तो अंशतः, रोज नहीं तो समय-समय पर खादी का परिधान पहनना युगधर्म है। कविवर सोहन लाल द्विवेदी के शब्दों में -

खादी की रजत चंद्रिका जब आकर तन पर मुसकाती है,
तब नवजीवन की नई ज्योति अन्तस्तल में जग जाती है।

वर्तमान में स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग के लिए सघन प्रयास चल रहा है और उसकी आपूर्ति की जिम्मेदारी पतंजलि आयुर्वेद, खादी ग्रामोद्योग व अन्य संस्थाओं ने उठाई है। इसी क्रम में खादी की गुणवत्ता, कीमत तथा बहुस्तरीय किस्में तैयार करने से लेकर वितरण-बिक्री के स्तर तक सर्वव्यापी आंदोलन की जरूरत है, ताकि इसे जनसाधारण की रुचि का विषय बनाया जा सके। प्रसिद्ध चिंतक क्लाड एल्वरेस का कहना है कि 'प्रगति के लिए हर संस्कृति का अपना प्रतिमान व आदर्श होता है। प्रौद्योगिकी का विकास उसी प्रतिमान और आदर्श के अनुरूप होना चाहिए।' खादी मानवीय जीवन मूल्यों एवं मूल्यपरक राजनीति व संस्कृति की संवाहिका है; अतः इसके मूलोद्देश्य से छेड़छाड़ न करते हुए, नवीनतम प्रौद्योगिकी व तकनीक के इस्तेमाल द्वारा समसामयिक आधुनिकता तथा यथासंभव ट्रेंड-फैशन के अनुरूप ढालकर इसे जन-जन के मन-मन की पसंद बनाने की आवश्यकता है।